हमसफ़र

आपकी ज़िंदगी में दो मिनट की क्या अहमियत है?

मैं एक आदमी से मिला। मैंने उनसे ये सवाल पूछा। वो बोले, “अरे बेटा! बहुत ज़्यादा। मैं एक कूरियर कम्पनी में काम करता हूँ। मुझे पैसा जितनी मैगज़ीन और चिट्ठियाँ बाँटीं, उसके हिसाब से मिलता है। हर सुबह अपने बंडल उठाने होते हैं। सब की कोशिश होती है कि ज़्यादा से ज़्यादा बंडल उठाएँ, और वो भी वैस कि कम से कम दूरी के हों। अगर मुझे सुबह दो मिनट की भी देरी हो जाती है तो मुझे कम, और दूर पहुँचाने वाले बंडल मिलते हैं। इससे मेरे पूरे महीने का हिसाब ख़राब हो जाता है।”

क्या आप के पास भी ऐसे सवाल हैं जो आप किसी से पूछना चाहेंगे?

अगर सड़क पर कोई भी इंसान नहीं होता तो सड़क के बारे में आप कैसे या क्या सोचते? क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि आप एक सुबह उठे और आपने देखा कि आपके आस-पास, आपकी कलोनी में कोई भी नहीं है? तब वो जगह कैसी होगी?

आज बारिश हुई है, तो आज शाम के अंधेरे का रंग गहरा लगने लगा है। बत्ती की चमक बारिश में झिलमिल कर रही है। बारिश के आते ही लोगों के कपड़े, जो कि घरों के बाहर सूख रहे थे, गीले हो गए। किसी घर में गैस पर कोई कुकर रखकर चला गया है, जिसकी सीटी की आवाज़ गली में गूँज रही है। सामने रेलिंग के ऊपर तार पर एक प्लास्टिक की पन्नी उड़ रही है। आज हवा कितनी अच्छी है - ठण्डी और भीगी-भीगी।

सामने का घर कोने के घर के नाम से जाना जाता है। उसके दरवाज़े के आगे हमेशा एक चारपाई बिछी रहती है। चारपाई पर ताश के पत्ते, बीड़ी, माचिस, हुक्का, अख़बार रखे हैं। ये सब भीग गए हैं, पर किसी का कुछ पता नहीं।

मैं, यानि कि इस छः नम्बर गली का गेट। मैं लोहे का हूँ, काले रंग का। मुझ पर एक बोर्ड टंगा है, जिस पर लिखा है,

"ये आम रास्ता नहीं है"। ये बोर्ड तो भारी नहीं है, पर उस पर जो लिखा है, वो मुझ पर एक भारी बोझ है।

मुझसे बेहतर तो वो दूसरे वाला गेट है, जो इसी गली का है, और जिसका रंग भी काला है। शक़्ल से तो बिलकुल मेरे जैसा है, पर उस पर जो बोर्ड लगा है वो अलग है। उस पर पूरी गली के एक से दूसरे सिरे तक के मकानों के नम्बर और वो कहाँ हैं, ये लिखा है। वो जो दूसरा गेट है, उसमें एक बड़ा और एक छोटा दरवाज़ा है। छोटा दरवाज़ा हमेशा खुला रहता है, जबकि बड़ा दरवाज़ा बंद। ये गेट काफ़ी ख़ुश रहता है। मैं ही हूँ, जो इस बोर्ड की वजह से बदनसीब हूँ।

बस ये, कि अब मुझसे बहुत कम लोग गुज़रते हैं। मैं तो बस शाम के वक़्त इस गली की चहल-पहल को देखकर ख़ुश रहने की कोशिश करता हूँ। शाम के वक़्त गली में कई लोग आते-जाते रहते हैं। बच्चों का भी बहुत हल्ला रहता है। कोई पकड़म-पकड़ाई खेल रहा होता है, तो कोई अपने घरों के दरवाज़े के बाहर बैठकर गेम खेल रहा होता है। घरों से टीवी चलने की तेज़ आवाज़ आती है।

ये बोर्ड मुझ पर हमेशा से नहीं था। गली में एक हादसा हुआ था जिसके बाद से ये मुझ पर लटका दिया गया था। पर ये बात अब भी मुझे ठीक तरह से मालूम नहीं है। ऐसा भी तो हो सकता है कि कई लोग शॉर्ट-कट के लिए मुझसे बार-बार गुज़रते थे, कोई भी अपना स्कूटर लेकर मुझमें से निकल जाता था, तो शायद वो ऐसा न करें, इस लिए मुझ पर ये बोर्ड लगा दिया गया। पर मुझे ये बात पूरी तरह से साफ़ नहीं है। अगर आप को हो, तो मुझे ज़रूर बताइएगा।

सुबह के दस बज रहे थे। मैं अपने घर की खिड़की से बाहर देख रही थी, और अपनी सहेली लीना के बारे में सोच रही थी। मैं उससे काफ़ी समय से मिली नहीं थी। खिड़की के सामने एक पतली-सी गली है। वहाँ सलमान नाम का पाँच साल का बच्चा दरवाज़े पर खड़ा था, और एक छोटी लड़की, जो गली से गुज़रने की कोशिश कर रही थी, को डंडे से डरा रहा था। लड़की जैसे ही आगे की तरफ़ आती, सलमान के उठते डंडे को देखकर रुक जाती। बार-बार डंडा उठाकर सलमान लड़की को डरता देख ज़ोर-ज़ोर से हँसता। छोटा-सा ये लड़का अपने आप को गली का दादा समझता है। वहाँ से गुज़रते सब बच्चों के साथ ऐसा ही करता है, पर उसकी दादी उसे कुछ नहीं कहती। आख़िर वो लड़की वापस चली गई।

मैं भी मुड़ कर अंदर की तरफ़ आ गई, और निकल पड़ी लीना के घर की तरफ़। लीना का घर मेरे घर से कुछ ही दूर, तुर्कमान गेट पर है। उससे मेरी पहली मुलाक़ात स्कूल के दिनों में मैथ्स के पीरियड में हुई थी। फिर दोनों ने साथ ही बारहवीं पास की। अब मैं जानना चाहती थी कि वो स्कूल के बाद क्या कर रही है। मैं फ़्री हूँ, पर उसे तो आगे बढ़ना है।

घर से निकलकर मैंने सड़क क्रॉस की। ट्रैफ़िक कम था, तो बिलकुल दिक्कत नहीं हुई। फिर तुर्कमान गेट के लिए रिक्शा किया और उसमें बैठकर आसपास की चीज़ें देखती और छोड़ती हुई पहुँच गई तुर्कमान गेट। अब मैं वहाँ थी जहाँ एक ओर हज मंज़िल है और दूसरी ओर एक बस स्टैंड है।

रिक्शे वाले ने पूछा, "अब कहाँ चलूँ?"
मैंने कहा, "उस गली में जहाँ चर्च है। चर्च से थोड़ा ही आगे जाना है।"
उसने तुरन्त रिक्शा मोड़ा। चर्च पास करते हुए मैंने सरकारी शौचालय, जो कि सफ़ेद है, के सामने रिक्शा रुकवा लिया। उतर कर रिक्शा वाले को दस रुपये दिये, और दो रुपये वापस लेकर गली के अंदर मुड़ गई। फिर एक छोटा-सा मोड़, एक और पतली गली, और उसके कोने में 786 नम्बर का एक घर, साइड में कारख़ाना और सामने लोहे का एक मज़बूत दरवाज़ा।

मैंने दरवाज़ा खटखटाया, "खट-खट"। अंदर से लीना की अम्मी की आवाज़ आई, "आती हूँ!" मैं उनकी आवाज़ पहचानती हूँ। उनके बोलने का अंदाज़ मीठा है, और बात करने से पहले 'बेटा' कहना उनकी आदत है। उन्होंने दरवाज़ा खोला। दरवाज़ा खोलते ही पहले साफ़-सुथरा रसोईघर है, जिसमें हर चीज़ सजी है। नमस्ते कह कर मैंने पूछा, "लीना कहाँ है?" और उनके बताने पर अंदर वाले कमरे में चली गई। लीना को मेरे आने का पता भी नहीं चला।

बिस्तर पर बैठी लीना अख़बार में डूबी थी। वो दोनों पैर मोड़कर, कोहनियाँ अख़बार पर रखकर, झुकी हुई थी। झुकने से उसकी चुटिया आगे की तरफ़ आ गई थी। उसके हाथ में लाल रंग का स्केच पेन था। वो काफ़ी गंभीर होकर पढ़ती, फिर निशान लगाती। एक और पेपर उसके साइड में रखा हुआ था, और एक तीसरा आधा बेड के ऊपर, आधा नीचे लटक रहा था।

मैं उस पल महरून रंग की कमीज़ पहने उस लड़की को देखती रही। जो रट्टे मार-मार कर याद किया करती थी, वो न जाने आज कौन सी उलझन में थी। बिस्तर के पास जाते हुए मैंने अख़बार पर नज़र डाली। पहले अख़बार का नाम पढ़ने की कोशिश की, पर जब वो नहीं दिखा तो लाल रंग के घेरे में क़ैद कॉलम पर नज़र डाली। उसमें लिखा थाः

मैं वहीं खड़ी होकर लीना को, उसके चेहरे की गंभीरता को देखती रही। मुझे यक़ीन था कि लीना जो भी काम करना चाहेगी, उसे वो मिल जाएगा। उसमें हमेशा मुझे ये दम नज़र आया है। वहीं पैर गढ़ाए, अख़बार के पन्नों में व्यस्त अपनी सहेली को देखते हुए मैं कल्पना करने की कोशिश करने लगी, कि तीन महीने बाद जब लीना से मेरी मुलाक़ात होगी तो इस घर के दरवाज़े पर दस्तक देने पर क्या आवाज़ आएगी, दिन का कौन सा पहर होगा, इस कमरे का मंज़र क्या होगा, लीना के चेहरे पर क्या भाव होंगे, लीना ज़िंदगी के किन नए पहलुओं से मुझे मिलवाएगी.....

मैं एक दिन बस में चढ़ा। उस बस में बहुत भीड़ थी। बहुत से लोग खड़े थे। और कुछ आदमी सीटों पर लेटे या सोए हुए थे। एक लेटे हुए आदमी के चेहरे पर पसीना छाया हुआ था। वो बार-बार अपना चेहरा रुमाल से पोंछ रहा था। बीच-बीच में उठ कर गर्मी दूर करने के लिए खिड़की पूरी अपनी तरफ़ खोल लेता।

जब गाड़ी अचानक ब्रेक लगने से ज़ोर से रुकती तो वो उठ जाता। उसे लगता है जैसे कोई उसे धक्का मार कर उठा रहा है। उसकी आँखें ग़ुस्से से एकदम लाल होतीं। मैं सोचने लगा कि हम जब बस में सफ़र करते है, तो टिकट लेने, आसपास के चेहरों, और बस के बाहर देखने में व्यस्त रहते हैं। खाली बस में माहौल अलग रहता है। पर कंडकटर तो तब भी आराम नहीं कर सकता, या सो नहीं सकता। क्योंकि फिर उस से कोई टिकट नहीं लेगा।

शायद ये दुनिया पागल होती तो कैसा होता?

किसी को कोई फ़िक्र न होती, और न कोई डर होता।

हाँ, मगर इतना होने के बावजूद ये पेट और न होता तो मानो सोने पर सुहागा। क्योंकि ज़ालिम ये पेट इंसान और जानवर से क्या-क्या नहीं करवाता। पर इस ज़रूरत के बाद कुछ और ज़रूरतें भी होती हैं जैसे नाम, शौहरत। आज किसे नाम की ज़रूरत नहीं है, आज कौन पैसा नहीं चाहता? जिसे मिला वो ख़ुश जिसे नहीं मिला वो दुःखी।

कोई आदमी हमारे दायरे में से अलग कैसे हुआ? वो ख़ुद हुआ है या उसे अलग कर दिया गया है? जब वो हमारे बीच ठीक-ठाक था, तब हम उसकी तारीफ़ें करते थे और बढ़ाई मारते थे। और आज ज़रा वो अलग या कुछ हट कर बोलता या हरकतें करता है तो हम उसका साथ छोड़ देते हैं, उसकी बीती बातों का मज़ाक बनाते हैं। हम उसके साथ गाँधी जी के बन्दरों जैसा बर्ताव क्यों करते हैं? जो न देख सकते हैं, न सुन सकते और न ही बोल सकते हैं। बस जो हो रहा है होने दो, हमें तो हँसने का मौक़ा मिले। ताक़ में रहते हैं हम, कि कब कोई ऐसा नमूना मिले, जिसे देखकर हमें थोड़ा मिर्च-मसाला मिल जाए। और हम उसे चटपटा बनायें। किसी की सोच का यूँ पकवान बनाना कहाँ की अक्लमंदी है? वैसे तो सोच हमारी भी मुकम्मल नहीं जो कि हम उन की सोच पर हँसते हैं, फिर हमदर्दी जताते हैं। हमारे दिमाग़ में हर वक़्त कुछ न कुछ चलता रहता है मगर वो आदमी जो अपनी अंदर की सोच के इशारों को बाहर दिखाता है, शायद उसे 'पागल' नाम दिया जाता है। वैसे तो पागलों के बारे में एक डॉक्टर के अलावा और कौन बता सकता है। और मैं डॉक्टर नहीं। उन लाखों-करोड़ों में से कुछ ही बन्दों के बारे में आप को बता सकता हूँ, जिन्हें मैं जानता और पहचानता हूँ।

कुछ साल पहले मेरे साथ ट्यूशन में एक सतपाल नाम का लड़का पढ़ता था। वो पढ़ने में बहुत तेज़ था। दसवीं कक्षा की परीक्षा में हम दोनों ने ख़ूब मेहनत की मगर नतीजा, फ़ेल। हमने दोबारा मेहनत की। मैथ की किताबों में एक-एक सवाल को सीखा, जोमेक्ट्री में भी कई कमी न छोड़ी। बड़ी मुश्किल से कम्पार्टमेंट आई, वो भी मैथ में। क्या करते, हमारी क़िस्मत पर पत्थर जो पड़े थे। फिर मैंने सोचा बेटा ऐसा ही रहा तो तेरा बैंड बज जाएगा। अब पेपरों के दिनों में पढ़ता कम और दिमाग़ को रैस्ट देने लगा।

ख़ैर! पेपर वाले दिन स्कूल में मैं और सतपाल मिले, हाथ मिलाकर अपने-अपने डैस्कों पर बैठ गए। नतीजा निकला और मैं पास। नम्बर बहुत कम थे मगर पास होने की ख़ुशी बहुत सारी थी। कई दिनों के बाद आज सतपाल मिला। एक सड़क के किनारे पर खड़ा हिसाब जोड़ रहा था, वो अपनी उंगलियों को भी गिन रहा था। मैं वहाँ से कहीं जा रहा था। मेरी नज़र सतपाल पर पड़ी,
"अबे तू यहाँ क्या कर रहा है सतपाल?"
वो बोला, "यार आज मेरा पेपर है। राकेश तू भी तो चल। टाईम होने वाला है।"
"अबे कौन सा पेपर भाई?"
सतपाल ने कहा, "मैथमैटिक्स का!"
मैंने कहा, "अबे क्या बक रहा है, यार तेरे होश तो ठिकाने पर हैं? पेपर ख़त्म हुए तो काफ़ी टाईम हो गया और ये तो नवम्बर का महीन चल रहा है। तू कहीं पागल तो नहीं हो गया।"
सतपाल ने कहा, "नहीं राकेश, मैं पागल नहीं हूँ। देख मैं तो जा रहा हूँ। तुझे चलना है तो चल। देख मैंने तो अपना आई कार्ड भी ले लिया है।"
मैंने कहा, "तेरी बातें मेरी समझ में नहीं आ रहीं हैं।"

मैंने यह कहा ही था कि इतने में सतपाल की मम्मी आ गईं और मुझे एक तरफ़ बुला कर कहा, "देखो बेटा, इसे फ़ेल होने का सदमा पहुँचा है। इसीलिए ये ऐसी बहकी बातें कर रहा है। ये तीन-चार बार फ़ेल हुआ है। तब से ऐसा ही है। कुछ न कुछ हिसाब में लगा रहता है और ख़ा-म-खां किताब खोलकर पढ़ने लगता है। हमें बताता रहता है कि मैं 80 प्रतिशत नम्बर लाकर रहूँगा। डॉक्टरों ने कहा है कि इसका इलाज घर से अच्छा और कहीं नहीं हो सकता। बस, सब इसकी हाँ में हाँ मिलाया करो।"

मैं सतपाल की माँ की बात सुनकर परेशान हो गया। जो लड़का पढ़ने में तेज़ और चालाक था वो कैसे पागल हो गया। मगर सोचने की बात ये है कि वो मुझे अब तक पहचानता है ओर बीती बातें भी दोहराता है। तो भला ऐसे लड़के को हम क्या कहेंगे?

ऐसा ही एक आदमी और है जो दक्षिणपुरी में अकसर दिखाई देता था। उसका असली नाम तो मुझे पता नहीं, लेकिन सब उसे अमिताभ कहते थे क्योंकि वो हमेशा एक्टिंग करता रहता था। ख़ासकर अमिताभ की। जब वो एक्टिंग करता, तो हम ख़ुश होते थे और हमारा मनोरंजन भी हो जाता था। और मज़ा तो तब आता जब वो एक्टर से डायरेक्टर बन जाता। फिर "एक्शन, लाईट, कैमरा बोलता और ऐसा लगता है जैसे शूटिंग का माहौल बन गया। मैं आज भी जब उस के बारे में सोचता हूँ तो उसकी एक्टिंग से इम्प्रैस हो जाता हूँ। हम उस एक्टर और उसकी बातों पर हँसते, ख़ुश होते और उसे पाँच-दस रुपए दे देते थे। वो इतने में ही ख़ुश हो जाता था। मुझे तो उस में कहीं से कोई कमी नहीं दिखाई देती थी। वो आज भी कहीं न कहीं होगा और लोगों को तमाशा दिखा कर ख़ुश करता होगा। क्या तमाशा दिखाना पागलपन है?

मैं उस पल महरून रंग की कमीज़ पहने उस लड़की को देखती रही।

जो चेहरा काफ़ी नॉरमल नज़र आ रहा था, अब हल्की-सी तमतमाहट में था।

जब मैंने बारहवीं क्लास पास की तो मन में एक उमंग सी लगी रहती थी कि मैं काम के लिए कोई फ़ॉर्म भरूँ। मैं अपने दोस्तों के साथ उस हर जगह जाता जहाँ फ़ॉर्म मिल रहे होते थे। वहाँ खड़े होकर मैं इंटर से जुड़े फ़ॉर्मों को देखता रहता। जो मुझे पसंद आते, मैं उन फ़ॉर्मों को भरकर पोस्ट करवा देता। उस वक़्त मैंने ये नहीं सोचा था कि अगर इंटरव्यू का कॉल आएगा तो मैं क्या करूँगा।

एक दिन मेरा कॉल लेटर आ गया। मन में एक ख़ुशी तो थी, पर उस ख़ुशी में एक घबराहट भी छिपी थी। वो इसलिए कि अब मुझे तैयारी भी करनी थी। मैंने पहले कभी ऐसा इम्तिहान नहीं दिया था। जैसे-जैसे इम्तिहान का दिन नज़दीक आता गया, मेरा टेंशन बढ़ता गया। अब मेरा मन किसी भी चीज़ में नहीं लग रहा था।

फिर जाने का समय आया। इम्तिहान के लिए मुझे दूसरे शहर जाना था। मैंने ट्रेन पकड़ी। पूरे रास्ते माथे पर हाथ रखकर बैठा सोचता रहा। लेकिन सोचने से होता भी क्या! बस सफ़र के वो आठ घंटे किसी तरह काटे। नींद का तो नाम-ओ-निशान नहीं था! कभी लेटता, कभी उठकर बैठ जाता। एक किताब अपने साथ लाया था, जिसमें कुछ सवाल-जवाब थे। जो इम्तिहान में शायद मेरी मदद कर सकते थे। बस ट्रेन की दीवार के सहारे सर लगाकर, वही खोलकर पढ़ता रहा। बीच-बीच में आँखों को मसलता। रह-रहकर इम्तिहान के ख़्याल से मेरे चेहरे पर लाली छाने लगती। स्टेशन, स्टेशन से सेंटर तक का सफ़र मेरे दिमाग़ में बिलकुल धुँधला है।

सेंटर जल्दी पहुँच गया तो जाकर पार्क में बैठ गया। वहाँ पार्क में मैंने

अपना चेहरा किसी और में देखा।

मेरे सामने एक छोटी दीवार के ऊपर एक लड़का बैठा था। बहुत चिंतित नज़र आ रहा था। उसके हाथ में एक किताब थी। वो बार-बार उसे देखता, और आँखें बंद कर पढ़े हुए के रट्टे लगाने लगता। और जब भूल जाता, तो अपने माथे को थपेड़ता। शायद कोई आन्सर उसके दिमाग में बैठ नहीं रहा था। फिर परेशान होकर वो इधर-उधर देखता।

उसे देखकर मुझे ऐसा लग रहा था वो वो नहीं, मैं हूँ। उसकी आँखें बार-बार घड़ी की तरफ़ जातीं। जैसे-जैसे वक़्त होता रहा, उसके चेहरे पर पसीना छूटता रहा। वैसे पसीना तो मुझे भी आ रहा था, मगर उसे देखकर मैं अपने-आपको ही भूलता जा रहा था। उसने अपनी पॉकेट में से भगवान की तस्वीर निकाली और कई बार आँखें मींचकर प्रार्थना की। मैंने नज़र घुमाई तो मुझे उसके और अपने जैसे और कई लोग दिखे। सभी के चेहरे देखने लायक थे। सबको देखकर मुझे हँसी भी आ रही थी और अंदर डर भी लग रहा था।

अहसासों की एक अजीब जंग थी और दोनों तरफ़ लड़ने वाला मैं अकेला ही था।
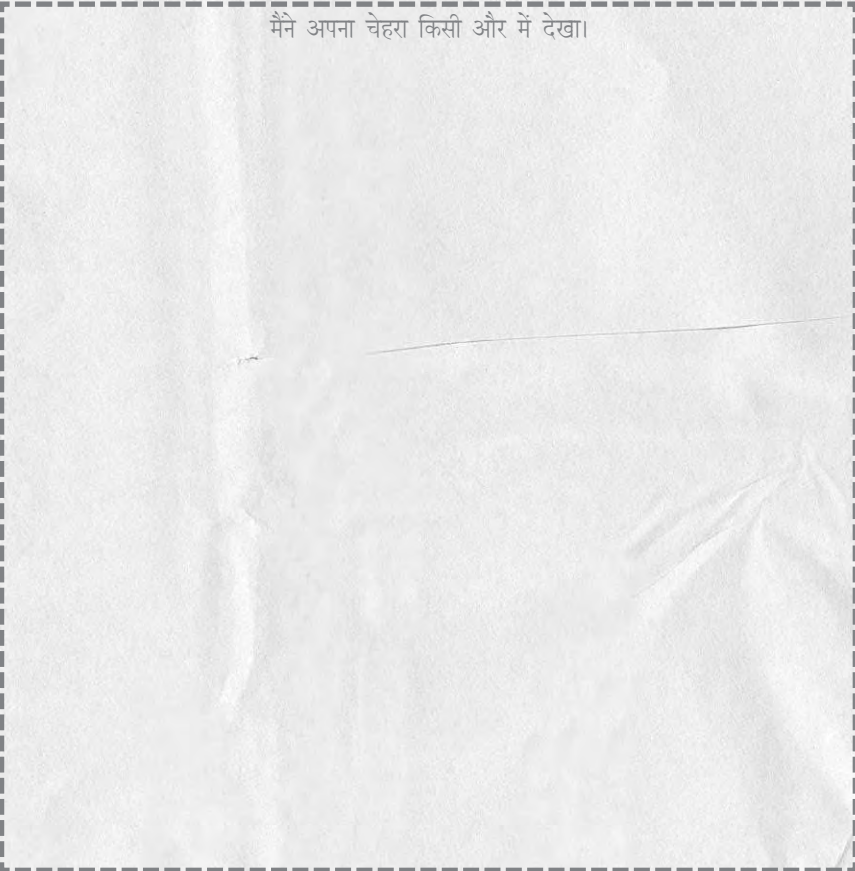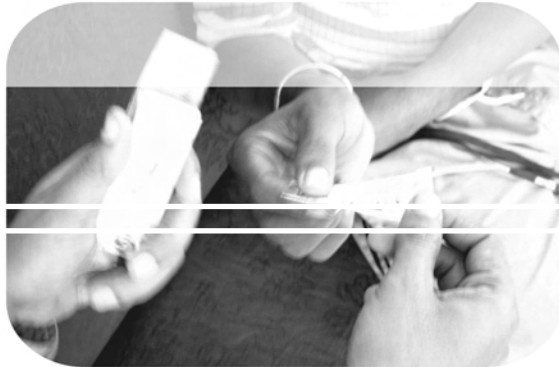
जब वो बोलतीं हैं तो दाँतों को देखकर लगता है हवा महल है। पर वो बोलतीं बहुत कम हैं। बस अपनी यादों को सजोकर रखती हैं। उनकी हर याद में कोई न कोई कहानी छिपी है। आज जब वो कमरे में दाख़िल हुईं तो उन्होंने अपनी कहानियाँ किसी को न सुनाने की अपनी आदत ख़त्म कर दी। उन्होंने हमें एक ऐसी कहानी सुनाई जो लगभग 45 से 50 साल पुरानी है, जब वो जवान थीं।

"ये देखो, ये गुड़िया! ये मेरी बड़ी अज़ीज़ है, अपनी जान से भी ज़्यादा प्यारी। हमेशा मेरे साथ ही रहती है। मैं इसे ख़ुद से कभी अलग नहीं करती। कभी कभार तो जब किसी शादी में जाती हूँ तो इसे अपने साथ लेकर जाती हूँ। मेरे पोता-पोती कभी-कभी इससे खेलते हैं। पर बड़े प्यार से, अपने किसी साथी की तरह।"

(हमने देखी, एक नई गुड़िया। गोरी सी, मुस्कुराता चेहरा, चमकते कपड़े, पैरों में काले जूते।)

"ये मेरी सहेली है, मेरी जीवन साथी। मेरे पति इसे अपनी साली मानते हैं।" (और यूँ कहानी सुनाते-सुनाते अम्मा अपनी यादों में चली गईं। कभी बतातीं, कभी चुप हो जातीं। चश्मे के पीछे उनकी आँखों में कुछ मोती से छलक रहे थे।) **अपनी उंगली से चश्मे को पीछे धकेलते हुए, वो अब बोलीं।** "बेटा बात लगभग तब की है जब मेरी उम्र शायद गुड़ियों से खेलने की थी। तब मैं एक कोठी में काम करने जाती थी। वो लोग अंग्रेज़ थे। उनकी दो लड़कियाँ थीं, बिलकुल गुड़ियों जैसी। एक दिन बड़ी वाली लड़की का जन्मदिन था। उसके पापा उसके लिए एक गुड़िया लाए। वो शायद बाहर की थी, क्योंकि वो अपना सारा ही सामान बाहर देश से लाते थे। उनका बाहर जाना लगा रहता था। चलो जन्म दिन पर बहुत लोग आए। बहुत बड़ी पार्टी थी। मेहमानों में कुछ अंग्रेज भी थे। जब उसके पापा गुड़िया लेकर आए तो सबकी नज़रें गुड़िया पर ही थीं। मेरा दिल तो कब का उस गुड़िया पर आ चुका था। पर वो मेरी कहाँ हो सकती थी। चलो, जन्मदिन की पार्टी हो ली, सभी अपने-अपने घर लौट गए। और लड़की भी अपने कमरे में सोने चली गई। मगर शायद उस लड़की को वो गुड़िया पसंद नहीं आई थी। वो उसे वहीं छोड़ गई। शायद उसे कुछ और चाहिए था, और उसे वो मिला नहीं इसलिए वो थोडा नाराज़ भी थी। बहुत रात हो चुकी थी, मैं अपने घर लौट आई। रातभर मुझे उस गुड़िया का ख़्याल आया, वो मेरे सपनों में भी आई। शायद वो मुझे कह रही थी, **"आओ, मेरे साथ खेलो।"**

"मगर मैं क्या करती, मैं तो उसे छू भी नहीं सकती थी। अगले दिन मैं उनके घर गई तो मैम ने कुछ इशारों में और कुछ हिन्दी में कहा - "सुनो, बेबी का कमरा साफ़ करा दो।" मैं बेबी के कमरे में गई और सबसे पहले मैंने अलमारी को साफ़ करने का सोचा क्योंकि वहाँ दोनों बहनों के सारे खिलौने रखे होते थे। मैंने सोचा 'शायद वो गुड़िया भी उसी अलमारी में हो।' **बस फिर क्या था।** मैंने अलमारी को साफ़ करने के लिए खोला, वो गुड़िया एकदम सामने ही रखी थी। मैंने उसे उठाया और अपने हाथों में लेकर बाहों में लिटा लिया। मैं कुछ देर उसे देखती रही और हल्के-हल्के उसे साफ़ करने लगी। **ऐसा कई दिनों तक चलता रहा।** मैं रोज़ छिप-छिप कर गुड़िया से खेलती और उससे बातें करती। उसे अपने सारे दिन की बातें बताती और उसके चेहरे को देखती रहती। क्यों? क्योंकि चाहे मैं उसे अपनी ख़ुशी की बात बताती या फिर दुख की, उसका चेहरा हर वक़्त खिला हुआ ही रहता। उसे भी तो दर्द होता होगा, पर वो फिर भी मुस्कुराती रहती। ये देखकर मुझे लगता कि जब तक वो मेरे साथ है, मेरे कोई दुख नहीं हैं। एक दिन जब मैं सुबह वहाँ पहुँची तो वो लड़की रो रही थी और उसकी माँ उसे चुप कराने की कोशिश कर रहीं थीं। वहीं कोने में वो गुड़िया रखी थी। उसके बाल बिगड़े हुए थे, टाँगें भी मुड़ी हुई थीं। मैं बहुत देर तक उसे देखती रही। मैं उसे उठा भी नहीं सकती थी। पर मुझसे देखा नहीं गया, और **मैंने उसे उठा ही लिया और उसे प्यार करने लगी।** शायद मेरे अंदर गुड़िया के लिए प्यार उस अंग्रेज़ औरत ने देख लिया, इसलिए ये गुड़िया मुझे दे दी। और तब से वो गुड़िया मेरे साथ, मेरे पास ही रहती है।"

'बस'

मान लीजिए ये बूढ़ी दादी अपनी पोती को यह कहानी सुना रहीं हैं। पास ही उन का बेटा बैठा है, जो दिन भर काम कर के लौटा है। इस कहानी में कितना समय है? क्या उतना जितनी देर कहानी सुनाने में लगा? या उतना जितने समय से कहानी गुज़री? या उतना, जितना सुनाने वाले और सुनने वालों की उम्र है? या कुछ और ही?

क्या आपने कभी मुझे ढूँढा है, अपने किसी ख़ास अहसास को किसी कोने तक पहुँचाने के लिए?

मीनाक्षी

को सुबह उसकी मम्मी उठाती हैं। उठकर सबसे पहले वो अपने खुले बालों में क्लिप लगाती है। फिर हाथ-मुँह धोकर किचन में जाती है। उसकी मम्मी छोटे भाई-बहनों को उठाकर स्कूल के लिए तैयार करती हैं। मीनाक्षी किचन में सबके लिए नाश्ता और लंच बनाती है। पहले दोनों छोटे भाई-बहनों को नाश्ता देती है, और लंच देकर स्कूल भेजती है। फिर उसके बड़े भाई और पापा उठते हैं, और मीनाक्षी उन्हें नाश्ता देती है। इसके बाद वो आटा गूँदती है, उसकी मम्मी सब्ज़ी काटती हैं। मीनाक्षी रोटी और सब्ज़ी बनाती है। मम्मी को चाय देती है और ख़ुद भी पीती है। इसके बाद पापा और भाई को लंच बाँधकर देती है। जब वो दोनों काम पर चले जाते हैं, तो रेडियो चलाकर घर का झाड़ू-पोंछा करती है। दस बजे तक उसका सारा काम ख़त्म हो जाता है। वो रेडियो बंद करके टीवी चलाती है। लगभग बारह बजे तक टीवी देखती है। अकसर टीवी देखते-देखते वो सो जाती है। उठने के बाद वो अपनी कॉलोनी के स्वास्थ्य केन्द्र जाती है। मीनाक्षी वहाँ कार्यकर्ता है। वो एड्स के बारे में जानकारी फैलाती है। इसके लिए उसे अकसर कॉलोनी से बाहर भी जाना होता है, दूसरे इलाक़ों में। अपने काम में वो कितने सारे लोगों से मिलती होगी। एक ही बात बताने के लिए वो सबसे अलग-अलग तरह से बात करती होगी।

वैसे तो स्वास्थ्य केन्द्र उसके घर से दो ही मिनट की दूरी पर है। मगर चलते-चलते अगर रास्ते में उसे कोई मिल जाता है, या वो रास्ते में कुछ देखने रुक जाती है तो उसे 5-7 मिनट भी लग जाते हैं। क्या मीनाक्षी का स्वास्थ्य केन्द्र को देखने का नज़रिया रास्ते से बदल जाता होगा? रास्ते में मीनाक्षी को देखती या घूरती हुई नज़रें उसके लिए स्वास्थ्य केन्द्र का माहौल किस तरह से बदल देती होंगी?

मैं पैदल चल दिया। मेरा नशा अब शायद उतर रहा था।

अभी मैं आकर बैठा ही था कि मेरे कानों में आवाज़ आई, "अशोकी चल, ब्लॉक चलना है।" मैंने वापस आकर कपड़े नहीं बदले थे, तो मैं एकदम निकल सका। बस, सारा सामान दोबारा से साइकल पर रखा और पैदल चल दिया। मेरा नशा अब शायद उतर रहा था। मुझे लगा कि मुझमें से शायद बदबू आ रही थी, क्योंकि मेरे साथ चलने वाले ने अपनी नाक पर रुमाल रखा हुआ था। उसकी आँखें मेरी तरफ़ आतीं, फिर घूम जातीं। धूप नहीं थी, पर मुझे गर्मी लग रही थी। शायद ये थकावट की गर्मी थी।

हम एक गली में पहुँचे। काफ़ी भीड़ थी। क्या सब छुट्टी पर थे? लग रहा था कि कुछ हो गया हो। वहाँ पहुँचकर मेरे साथी भीड़ को हटवाने लगे, सभी लोग उनसे कुछ-कुछ कहने लगे। मेरे पैरों में दर्द हो रहा था। मैं एक घर के आगे बनी एक छोटी सी सीढ़ी पर बैठ गया। मेरा शरीर तो सूखा था पर पैंट गीली थी। मैं बैठा तो मुझ पर कई सारी मक्खियाँ आकर बैठ गईं। आस-पास लोग मुझे देखकर कुछ सोच में थे। तभी एक औरत आई और मुझसे बोली, "भइया, आप ज़रा वहाँ खड़े हो जाएँगे, मुझे यहाँ सफ़ाई करनी है।" मैंने आधा सैकेण्ड सोचा, फिर उठ गया। मैं अपने साथियों का आवाज़ देकर मुझे बुलाने का इंतज़ार कर रहा था। आस-पास सब लोग मुझे देखकर एक-दूसरे को मेरी तरफ़ इशारे कर रहे थे।

पूरी गली गीली थी। रात को बारिश पड़ी थी तो सीवर पूरे भर गए थे। एक शख़्स मेरे पास आया और बोला, "ओ भाई चल।" वो मुझे बार-बार ऊपर से नीचे देख रहा था।

मैं सीवर के पास गया तो देखा सीवर में कपड़े ही कपड़े भरे हुए थे। जब मैं सीवर में घुसा तो मुझे काफ़ी बदबू आ रही थी। शायद ये नशा उतर जाने की वजह से था। गली में किसी ने तेज़ आवाज़ में गाना चला रखा था। मुझे ये अच्छा लग रहा था। बार-बार, मैं सीवर से कपड़े निकालकर बाहर रख रहा था। जब भी बाहर रखता, तब लोग ऐसे पीछे हटते जैसे पता नहीं कपड़े नहीं, कुछ और ही हो। लोगों की बातें ख़त्म ही नहीं हो रही थीं, सब कुछ न कुछ बोलते जा रहे थे। कोई किसी को कोसता तो कोई मुझ से कुछ कहता।

सीवर के अंदर नाली में कुछ बड़ा सा फंसा हुआ था, पत्थर जैसा कुछ। उसकी वजह से पानी आगे नहीं बढ़ पा रहा था। मैंने काफ़ी कोशिश की, पर उसे हिला न सका। मेरे साथी मुझे से पूछ रहे थे कि क्या हुआ, पर मैं जवाब नहीं दे पा रहा था क्योंकि मेरा ध्यान उस अड़चन पर था।

हल्की बारिश शुरू हो गई। लोगों ने बिखरना, छिपना शुरू कर दिया। मेरे साथी भी ऐसा ही कुछ करने की फ़िराक़ में थे। यकायक बारिश तेज़ हो गई। बारिश की तेज़ी से पड़ती बूंदों से सीवर का गंद उछलकर मेरे मुँह तक आता। अब तक सभी देखने वाले छुप गए थे। मगर पत्थर अपनी जगह से नहीं हिला था। पाँच मिनट में गली में पानी भरना शुरू हो गया। सभी हल्ला मचाने लगे कि पानी घरों में आ जाएगा। वो बार-बार मेरी तरफ़ देखते। मैं सीवर से बाहर निकला और एक सरिया लाया, उससे नाली के पत्थर को मारने लगा। सभी इधर-उधर छिपकर खड़े थे। मैं अकेला ही बाहर था। मैंने सरिये के वार और तेज़ कर दिए। पानी जाना शुरू हो गया। शायद वो पत्थर टूट गया था। लोग ख़ूब ज़ोरों से चिल्लाए, जैसे की लॉटरी लग गई हो।

सीवर से बाहर निकलकर मैंने ढक्कन लगाया। थोड़ी देर वहीं खड़ा रहा, बारिश में। फिर कोने के मकान के बाहर हाथ-पैर धोए और वहीं अपने साथियों से अलग खड़ा रहा। कुछ ही देर में बारिश बंद हो गई। लोग मुझे देखकर मुस्कुरा रहे थे। मैं भी अंदर ही अंदर खुश था अपने काम से। मेरी थकान बढ़ने की जगह कम हो गई थी, मैं साइकिल पर चढ़कर आफ़िस की तरफ़ चल दिया। वहीं कपड़े बदलकर अंदर जाकर लेट गया, कुछ आराम करने के लिए।

क्या कमरे को देखने का नज़रिया रास्ते से बदल जाता है?

गली में किसी ने तेज़ आवाज़ में गाना चला रखा था। मुझे ये अच्छा लग रहा था।

एक ढाँचा जिसे मैंने कई महीनों से बदलते हुए देखा है। मेरी छोटी बहन लक्ष्मी जो बिल्कुल तीखी मिर्ची की तरह है। और गुस्सा तो ऐसे आता है जैसे दूध में उबाल। पल में तोला, पल में माशा वाला कहानी रहती है उसकी। आज से तकरीबन 11 महीने पहले एक दुबली पतली लड़की जिसे घर के काम-काज में अपने हुलिये को भी संवारने का वक़्त नहीं मिलता था। वो दिनभर किसी न किसी काम में लगी रहती पर टीवी ज़रूर चलाए रखती क्योंकि उसे डांस और गानों का शौक़ है। वो काम करते-करते म्यूजिक़ पर थिरकती भी रहती। और जब शाम को मैं घर पहुँचती तो फ़ौरन मुझे पानी देती। स्टोव जलाकर चाय का पानी चढ़ाती। इतने में पानी खौलता, तब तक हम दोनों इधर-उधर की बातें करते रहते। वो मुझसे ही खुलकर बातें करती। बाकी तो पूरा दिन वो अपने होंठों पर चुप्पी लगाए ही गुज़ार देती। अगर घर में कोई मेहमान आ जाता तो एक बौखलाहट से अन्दर किचन में आ जाती और उस बौखलाहट में वो कुछ ना कुछ ग़लत कर देती। कभी चाय में चीनी तेज़ कर देती या कभी चीनी डालना ही भूल जाती। उसको इस हालत में देखकर मैं कहती, "तुझे क्या हो जाता है लक्ष्मी! किसी के घर आने से तू काँपने क्यों लगती है?" वो होंठों को चबाते हुए कहती, "पता नहीं नन्नी, मुझे इतने लोगों को देखकर घबराहट सी होने लगती है।" मुझे उसकी इस बात पर हँसी आ जाती। मैं उससे कहती, **"अगर तू सड़क पर चलेगी तो क्या करेगी?" वो जवाब में सिर्फ़ मुस्कुराकर रह जाती।**

ऐसे ही धीरे-धीरे समय गुज़रने लगा और उसकी चुप्पी मज़बूती में बदलने लगी। उसने अपने आपको, अपने सिले हुए घर की चारदीवारी में ही समेटकर रख लिया था। वो अन्दर रहने की वजह से दुबली और काली होती जा रही थी। मुझसे उसकी ये हालत देखी नहीं जाती थी। आख़िर उसकी बड़ी बहन जो थी!

मैंने उसे कोई कोर्स करने के लिए उकसाया। पहले तो वो नहीं मानी पर बाद में राज़ी हो गई। इससे हम सबके यानि, मुझे, माँ, चाचा और राहुल को बहुत ख़ुशी हुई। पर आज मैं बहुत दुखी हूँ क्योंकि जब मैं शाम को घर लौटती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है जैसे ये बन्द दरवाज़ा मेरी खिल्ली उड़ा रहा है। घर में चारों तरफ़ शांति ही शांति रहती है। कोई एक गिलास पानी पिलाने वाला भी नज़र नहीं आता। लगता है जैसे चारों तरफ़ लक्ष्मी ही लक्ष्मी खड़ी है, एक हाथ में पानी और दूसरे में चाय का कप लिये। पता नहीं क्यों अब पानी और चाय में मज़ा नहीं आता।

कितनी नर्वस थी वो कि अकेली बाहर कैसे जायेगी। उसके लिए बहुत बड़ी चुनौती थी क्योंकि वो कई साल पहले ही स्कूल छोड़ चुकी थी। तब से उसने अपने आपको घर में ही क़ैद कर लिया था। **अब दोबारा से वो दुनिया की भागदौड़ में क़दम रख रही थी।** एक ऐसी भागदौड़ जहाँ लोगों की नज़रें आपको कब घायल करके निकल जाएँ पता ही नहीं चलता।

पर अब जब ठान ही लिया था कि कोर्स करना है तो बाहर भी निकलना ही था। अब उसने आना-जाना शुरु किया, पर वो सड़क पर चलते हुए डरती थी। लड़कों के कमेन्ट्स सुनती तो कलेजा मुँह को आ जाता। उसे लोगों से मिलने-जुलने की आदत तो थी नहीं और क्लास में बहुत सारी लड़कियाँ थीं, जो उससे बातें करती थीं। वो इस बात से भी परेशान थी। अपनी क्लास की लड़कियों की बातें मुझे बताती। वहाँ उसकी बहुत जल्दी एक दोस्त बनी जिसका नाम था शालू। शालू, जिसका किसी से नया-नया इश्क हुआ था। वो अपनी दास्तान-ए-इश्क किसी को सुनाना चाहती थी। वो भी ऐसे इंसान को जो तसल्ली से सुने और किसी से कहे नहीं। ऐसा भोलापन उसे लक्ष्मी में नज़र आया। एक ऐसी लड़की जिसे चुटिया में बल देने का सलीका भी नहीं था। जो सिर्फ़ ख़ामोश होकर सबकी बात सुना करती थी। लक्ष्मी में एक आदत थी, वो सारी बातें मुझे बताती और कई-कई घंटे मेरे कान खाया करती। कभी-कभी तो मैं झुंझलाकर कहती, "मेरा दिमाग मत चाट!" वो झट से कहती, "अच्छा और जो तू अपनी बातें सुना-सुनाकर मेरा दिमाग चाटा करती थी, उस वक्त मैं कैसे झेलती थी तुझे!" उसकी इस बात का मेरे पास कोई जवाब नहीं होता। वो फिर शुरु हो जाती, "पता है हमारी क्लास की लड़कियाँ कितना बोलती हैं!" पर वो ये नहीं सोचती थी कि सबके कच्चे-चिट्ठे सुनाने में वो ख़ुद कितना बोलती है।

धीरे-धीरे उसका व्यक्तित्व भी बदलने लगा। **अब एक हलचल सी थी मोहल्ले में।** एक शांत सी लड़की अब दुनिया के रंगों में रंगने लगी थी। सभी उसे देख-देखकर हैरत भरते और बातें बनाते, "अरे! देखा तुमने कैसे स्टाइल में निकलती है। उसका कपड़े पहनने का तरीक़ा देखा। काली पैंट पर एक से एक शॉर्ट कुर्ता पहनती है। चप्पल देखी! ब्राउन रंग की, उसकी कितनी हील है। बालों में कैसे रंग करती है। पहले तो अंगुली में छल्ला तक नहीं पहनती थी अब तो ड्रेस की मैचिंग की चूड़ियाँ और ईयरिंग डालती है। भैया बड़े दिमाग हो रहे हैं आसमान में इस लड़की के!" लोग बातें बनाते पर हम जानते थे कि वो कितनी भोली और सीधी है।

ऐसे ही लोगों की ज़बानें, और लक्ष्मी का दिमाग़ चलते न जाने छः महीने कहाँ छूमन्तर हो गए। अब उसका कोर्स पूरा हो चुका था। लेकिन वो अपने हुनर को घर में बैठकर धुंधलाना नहीं चाहती थी। इसलिए उसने सीताराम बाज़ार में एक पार्लर ज्वाइन कर लिया। अब वो सुबह 10 बजे निकलती और शाम को घर लौटती। उसका एक रुटीन सा बन गया था और उस रुटीन में शामिल था उसका तैयार होना। अब उसे अपने आपको संवारने में आलस सा आने लगा था। जब वो सुबह जाने के लिए तैयार होती तो काफ़ी देर आइने के सामने अपना सिर पकड़कर बैठी रहती। इस बात से मुझे बड़ी हैरत होती। **जिस लड़की को सजना-संवरना बहुत अच्छा लगने लगा था अब वो इस मेकअप से बोर होने लगी थी।** उसे इस तरह बैठा देख मैं कहती, "जब मन नहीं करता तो क्यों तैयार होती है। ऐसे ही चली जाया कर।" वो आँखों में लाइनर लगाते हुए कहती, "ऐसे नहीं जा सकती।" "क्यो?" होठों पर लिप-लाइनर लगाते हुए कहती, "पागल, हम औरतों का हुलिया बदलते हैं। उन्हें ख़ूबसूरत बनाते है। अगर हमारा ही हुलिया बिगड़ा होगा तो वो ये नहीं सोचेंगी की ख़ुद तो बिगड़ी मशीन है, हमें क्या खूबसूरत बनाएगी।" अपनी जगह उसकी बात भी ठीक थी। पर इस बात से मुझे बड़ा अचम्भा होता। जो लड़की शुरु में इन सब चीज़ों को अपने शौक़ में लिया करती थी अब वो सजने-संवरने को काम के द्वारा देखने लगी थी। मैंने बहुत क़रीब से देखा था शौक़ को काम में बदलते हुए।

अब उसके बोलने का तरीक़ा भी बदलने लगा था। पहले वो सबसे नमस्ते कहती थी। पर अब बड़ा ही मुस्कुराकर हेलो बोलती और पर्स तो ऐसे एक्शन से तख़्त पर फेंकती की मेरी आँखें खुली की खुली रह जातीं। पहले जिस लड़की के मुँह में ज़बान नहीं थी अब ढेरों तरंगें निकलती थीं। इतने कम समय में बदलाव कहाँ से आया ये मैं समझ नहीं पा रही थी। मुझसे चाय बनाने के लिए तो ऐसे बोलती जैसे मैं उसकी चाय बनाने के लिए ही बैठी हूँ। पर मुझे बुरा नहीं लगता। चाहे ये सर्विस एक्सचेंज़ हो गई थी पर हम साथ बैठकर चाय तो पी सकते थे। मुझे इतना ही चाहिए था। **मेरे चाय के प्याले के दो मिनट मुझे वापस मिल गए थे।**

आइए, ये एक ऐसी जगह है जहाँ एक शख़्स माहौल का रंग बदलने के लिए काफ़ी होता है।

ये समाज लोगों से बना है। यहाँ अपने-आपको अकेला समझना सरासर नाइंसाफ़ी होगी। अपने साथ इंसान ने इसलिए समाज में अलग-अलग चीज़ें बनाईं हैं, उन्नती के लिए और जीने के लिए। हर इंसान की फ़ितरत है कहीं पर अपनी जगह बनाने की चाहे वो स्कूल हो, काम की जगह हो, या घर हो। पर वहाँ मज़ा आना चाहिए। इससे बड़ी बात हम नहीं सोचते। हम आपस में झगड़ते, बहस करते हैं। कुछ निकलकर आता है तो ख़ुशी मिलने लगती है। उस माहौल में शरीक़ होने की आदत हो जाती है। जो भी काम करते हैं, हमारी उम्र की सीमा के हिसाब से होते हैं। इन सभी कामों को निपटाते हुए हम अपने अलग-अलग माहौल में शरीक़ होते हैं। ये माहौल कहीं भी बन सकता है। ज़रूरी नहीं है वक़्त भी। समय दो घण्टे भी हो सकता है, और पच्चीस मिनट भी। इसी तरह का माहौल मेरे जीवन में भी बना है। मैं अब तक ऐसे कई सारे माहौल अपने जीवन में बना चुका हूँ। और उम्र के बढ़ते क़दमों के साथ मेरे ये माहौल भी रूप बदलते रहे हैं। इसी के साथ और कई बदलाव भी होते हैं जैसे - लोग, जगह, शक्ल और देखने वालों का नज़रिया। **मेरी उम्र जिस सीमा से गुज़रती रहती है, मेरे वो माहौल छूटते रहते हैं।**

अब मेरी उम्र 17 साल की है और बहुत जल्द मैं 18 का हो जाऊँगा। इस उम्र के साथ मैंने जिस माहौल में शरीक़ होना शुरू किया है, वो है मेरी ही उम्र के नौजवानों का कारख़ाना। इस कारख़ाने में ज़ेवर के बक्से बनते हैं, जिनमें लोग हार-जवाहरात रखते हैं। ये मेरे दोस्त का कारख़ाना है। इस कारख़ाने से मेरी मुलाक़ात एक टकराव के साथ हुई। एक दिन मेरे दोस्त ने ताव में आकर मुझ से कहा, "यार, अब मैं अपना कारख़ाना खोलना चाहता हूँ। काम की जगह बदलते-बदलते थक गया हूँ। मैं भी कुछ करना चाहता हूँ, गाली खाना नहीं।" और कुछ ही दिनों में उसने अपना कारख़ाना खोल लिया। शुरू में उसे कुछ दिक्कतें आईं - काम के लिए बच्चे ढूँढ़ना, मार्किट में अपना बनाया हुआ माल सप्लाई करने के लिए अपनी बात बनाना। इसके बाद रखी गई उस कारख़ाने की नींव। **मैंने भी उस नींव में अपने माहौल की एक ईंट लगाई।** मैंने वक़्त निकाला अपनी दिनचर्या में से। बहुत ज़्यादा वक़्त नहीं मिला मुझे इसके लिए - शाम के छः बजे से रात से आठ बजे तक का समय। पूरे ढाई घण्टे। ये मेरे लिए भी बहुत था, और उनके लिए भी बहुत है।

कारख़ाने में कितने लड़के काम करते हैं, ये बताना तो मुश्किल है। **इसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं है, ये तो बदलता रहता है।** कभी कोई बढ़ जाता है, तो कभी कोई कम हो जाता है। कोई आ जाता है, तो कोई हट जाता है। महीने, दो महीने में ये बात ज़रूर देखने को मिलती है। यही क्रम यहाँ चलता रहता है। इससे कारख़ाने का माहौल कभी गर्म हो जाता है, तो कभी ठण्डा। ये मेरे लिए बहुत अच्छी बात है। मुझे भी एक नज़रिया मिल जाता है माहौल को एक अलग नज़र से देखने का, जिसमें **हम लोगों का एक-दूसरे पर आकर्षण छूटता-पकता रहता है।** एक और मज़ेदार बात ये है कि सब के हमउम्र होने की वजह से कोई किसी को बढ़ावा नहीं देता। मतलब, जैसे अगर कोई ग़लती हो गई और उस्तादजी ने बताने-समझाने की कोशिश की, तो बन्दे उन्हीं से बहस करने लगते हैं। और जब ये होता है तो बहुत मज़ा आता है। काफ़ी हँसने को भी मिलता है। ऐसी कई बातों ने मुझे यहाँ बाँध रखा है। यहाँ मुझे काफ़ी कुछ सीखने को भी मिलता है। मैं यहाँ आकर यहाँ का काम करता हूँ और क्योंकि मुझे काफ़ी काम आ भी गया है, तो मुझे यहाँ आने-जाने में कोई रुकावट भी नहीं है। **मेरे लिए ये एक पहला ऐसा संदर्भ बना है जिसमें हर बन्दे से अलग बात होती है।** हम यहाँ अपनी क्रिकेट टीम की भी बात करते हैं, और एक-दूसरे की टाँग भी खींचते हैं; जिससे हम सभी को ख़ुशी मिलती है। किसी को किसी से ठेस पहुँचती है तो हम उसका मिलकर सामना करते हैं, और उस पर काफ़ी चर्चा भी करते हैं। बहुत बहस के बाद जो निष्कर्ष निकलता है, सब उसी पर चलते हैं। किसी भी शख़्स ने वो निष्कर्ष नहीं निकाला होता, पर सभी जानते हैं कि निष्कर्ष क्या है। वैसे ये समाज का एक कड़वा नियम है - हमारे ऊपर कई पाबंदियाँ होतीं हैं, और हमें उनके नाम भी मालूम नहीं होते।

यहाँ से हमारे कारख़ाने की शुरुआत होती है - **हमउम्र नौजवान के बैचेन दिलों के माहौल की शुरुआत।** और इसमें अब मैंने आपको भी शामिल कर लिया है।

ए क बार सफ़र करते हुए एक साथी ने अपने हमसफ़र से पूछा, “रास्ते इतने लम्बे क्यों होते हैं?” तो हमसफ़र ने कहा, “रास्ते तो मुसाफ़िरों से बनते हैं। मुसाफ़िरों पर निर्भर करता है कि वो सफ़र कर रहे हैं या अपने क़दम गिन रहे हैं।”

हम हर रोज़ कई रास्तों से गुज़रते हैं, रास्तों पर कई मूड ले कर चलते हैं। अगर किसी का साथ मिल जाए तो बातों ही बातों में रास्ते की लंबाई का पता हीं नहीं चलता। एक रास्ते से कई रास्ते जुड़ते जाते हैं, एक जगह से दूसरी जगह का जुड़ाव होता रहता है। और रास्तों पर लोगों से मिलते-टकराते, उन्हें अपने रोज़ाना से जोड़ते, हम कई लोगों के हमराही बन जाते हैं - चाहे वो साथ कितने ही कम फ़ांसले का क्यों न हो।

मैं रोज़ाना अपने घर से सर्वप्रिय विहार के लिए निकलता हूँ। मेरे घर के बाहर से सुबह ठीक 9:05 वाली 512 नंबर की बस जाती है। मैं अकसर उसी में जाता हूँ। मेरे घर के बाहर कोई बस स्टैंड नहीं है, वहाँ बस को हाथ देकर रोकने का रिवाज़ है। मैं नहा-धोकर ठीक नौ बजने में पाँच मिनट पर बाहर खड़ा हो जाता हूँ और गाड़ी को हाथ देकर रूकवा लेता हूँ ये मेरा रोज़ाना का रूटीन बन गया है। पर पता है क्या होता है! अगर किसी दिन मुझे बस में जाना नहीं होता, और मैं वही पास में कहीं खड़ा होता हूँ तो वो बस वाला मेरे बिना हाथ दिए मुझे देखकर ही बस रोक लेता है। क्या मैं भी उस के रास्ते से जुड़ गया हूँ? वो मुझे देखकर क्या सोचकर गाड़ी रोक लेता है? क्या मैं उस के रूटीन में बंध गया हूँ? **वो मेरे चेहरे में क्या देखता होगा?**

रास्तों पर चलते हुए हमें अपने आस-पास कितने ही पहलू दिखाई पड़ते हैं। जब हम अकेले उन से गुज़रते हुए बहते हैं तो ये सब पहलू और उन से जुड़े शख़्सों के अक्स हमारे साथ बहते हैं। मेरे घर के सामने एक हरे रंग का पुराना-सा मकान है। उस के लकड़ी के दरवाज़े के आगे हमेशा एक बुज़ुर्ग औरत बैठी दिखाई पड़ती है। वो हमेशा चुपचाप रहती हैं। उनकी आँखे इधर-उधर जाती हैं, पर फिर कहीं पर रुक जाती हैं। वो वहाँ से बहुत कुछ देखतीं, सुनती और महसूस करती हैं। पर उनकी पुज़िशन वैसी ही रहती है। उन्हें सुबह वहाँ कोई बिठा देता है और शाम को उठा कर अंदर ले जाता है। समय चलता रहता है, और उस जगह में तस्वीरें, आवाज़ें बदलती रहती हैं। उन्हीं सब के साथ उन के चेहरे के भाव भी बदलते रहते हैं।

रोज़ सुबह वहाँ से मुझे गुज़रता देख वो अपने कौन से क़िस्से मेरे चेहरे से फ़िट कर के मुझे अपनी ज़िंदगी के आरकाईव का हिस्सेदार बनाती होंगी? ये सवाल लेकर जब मैं गली में से निकलता हूँ तो मेरी नज़र को ये खोज़ रहती है कि मेरे साथ वाला शख़्स मुझे देखकर मुझ से क्या जोड़ता होगा? और इस तरह सोचते-सोचते मुझे अपने एक और साथी की बात याद आ जाती है, जिस ने कहा था कि अपने आप को अकेला समझना तो सरासर नाइंसाफ़ी होगी। और अकेले सफ़र करते हुए यकायक मेरे चेहरे पर हल्की सी मुस्कुराहट फैल जाती है।

वैसे देखा जाए तो ये तो अकसर होता ही है। एक ही जगह से हम रोज़ गुज़रते हैं तो वहाँ कई लोग और आवाज़ें हमारे रास्ते से जुड़ जाती हैं। इन आवाज़ों में कई ऐसी आवाज़ें होतीं हैं जो हमारे आसपास ही घुमती हुई चलती हैं। कई तो शब्दों की चादर में लिपटी होती हैं। यानि लव्ज़ बनकर बातचीत में ढक जातीं हैं। और कई बातचीत तो रोज़ाना के रूटीन में कुछ बदली-सी मालुम होतीं हैं। जैसे मैं आपको एक बातचीत का हिस्सा बनाता हूँ जिसमें मैं टहलकर आया हूँ।

एक बार की बात है हमारी गली के बाहर सामने वाली रोड़ पर कई दुकाने हैं जो छप्पड़ में बनी हैं। उनमें ज़्यादातर नाई, मेकैनिक और फ़र्नीचर की दुकानें हैं। वहीं साथ में बस स्टैंड है। वहाँ 24 घंटे गाड़ियों की आवाज़ें, चलती बदलती रहतीं हैं। एक बार बस का इंतजार करते-करते मैं नाई की दुकान में चला गया। सोचा बाल सेट करवा लूँ। तो वहाँ एक शख़्स आया और नाई से कहने लगाः

“भाई साहब शेव बना दीजिए।”

“जी ज़रूर, मगर आपकी तो दाढ़ी आ ही नहीं रही।”

“कोई बात नहीं। जितनी है उतनी बना दीजिये।”

“मगर ये ठीक नहीं है। आप रोज़ाना शेव कहाँ से बनवाते हैं?”

“देख यार, मैं रोज़, 9:05 पर सलीम की दुकान पर जाता हूँ शेव कराने, और वो करता है। और मैं ठीक समय पर ऑफ़िस पहुँच जाता हूँ। लेकिन आज उसकी दुकान बंद है तो मेरा रूटीन ख़राब हो रहा है। मैं घर से पानी लगाकर आया हूँ। आप बस शेव कर दीजिए।”

“अरे सलीम! वो तो कर ही देगा। उसे तो ग्राहक चाहिएँ बस! पर मैं ब्लेड कहाँ चलाउँगा, दाढ़ी बिलकुल भी नहीं है।”

“अरे यार, आप शेव बना दीजिये। मेरी शेव 12 बजे के बाद बढ़ने लगती है।”

“अरे भाई साहब, ऐसा नहीं होता। आप क्यों लेट हो रहे हो? क्यों अपना रूटीन चेंज कर रहे हो?”

मैं उनकी बातों को सुन रहा था। वहाँ आवाज़ें तो बहुत थीं, मगर मेरे कान यहीं से बंधे हुए थे। **क्या ऐसा होता है कि हम जिससे रोज़ाना एक ही टाईम पर मिलते हैं, अगर वो एक दिन नहीं मिले तो रूटीन में एक चेंज आ जाता है, या रूटीन उस शख़्स से आज़ाद हो जाता है?** ऐसी बातचीत को हम रोज़ाना सुनते हैं पर कभी उसमें समय और जगह को बंधते देखा है? क्या ऐसी बातचीत किसी पहलू का आभास कराती है?

हमसफ़र ने साथी से पूछा, “क्या अब भी तुम्हें रास्ते लम्बे लगते हैं?” फिर साथी ने कहा, “ये तो पता नहीं कि रास्ते लम्बे होते हैं या नहीं, पर इतना ज़रूर है कि जब हम किसी की बातों के साथ सफ़र करने लगते हैं तो बड़ी आहिस्तगी के साथ अपनी मंज़िल पर पहुँच जाते हैं। और वो लम्हा बड़ा चौकाने वाला होता है जब हमसफ़र अपना दामन छुड़ाकर हमें ये आभास कराता है कि सफ़र अब ख़त्म हुआ।”

वैसे देखा जाए तो ये कुछ ऐसी झलकियाँ हैं जो हम से सफ़र में कहीं न कहीं टकरा ही जातीं हैं। **सफ़र जारी है। सामने वाली सीट खाली है। कहने, बोलने, बताने का सिलसिला जारी है। कहिए, कौन चलेगा हमारे साथ?**

सफ़र में हम आगे बढ़ें, उस से पहले हम आपको कुछ बताना चाहेंगे। ये जो ब्रॉडशीट है, वो लगभग 70 लोगों के प्रयोंगों का नतीजा है। पर जब आप इस के पन्ने घुमाएँगे तो किसी का भी नाम इस में ‘लेखक’ की भूमिका में नहीं पाएँगे। और न ही किसी लेख का शीर्षक ही मिलेगा आप को। ऐसा क्यों? ज़रा सोचिए, दादी ने, दूर से आए किसी मुसाफ़िर ने, राह चलते किसी हमसफ़र ने, काम करते किसी हमराही ने आप को जो क़िस्से-कहानियाँ सुनाईं, उनका भी कभी कोई लेखक है भला? कहानियाँ तो मुँह-ज़ुबानी होती हैं – अगर सुनाई न जाएँ, तो गुम हो जातीं हैं, ठहर जातीं हैं। कहानियाँ एक से दूसरे शख़्स के बीच बहती रहतीं हैं। तो हम ने सोचा, शीर्षक और नाम देकर इस बहाव को क्यों रोकें! हमारे बीच कहानियाँ बहतीं हैं, और कहानियों के साथ, हम।

ब्रॉडशीट एडिटोरियल टीम - लख्मी और यशोदा

मेरा नाम क्यों पूछ रही हैं?

ये एक कबाड़ी की दुकान है। जो यहाँ क़रीब दस साल से है। इस दुकान में काफ़ी कचरा है। मैं उस दिन यहाँ फ़ोटो खींचने आई तो सबसे पहले मैंने दुकानदार से नमस्ते किया। पर दुकान वाला कुछ खड़ूस टाइप का था।

मेरा मतलब काफ़ी गुस्से वाला। मेरे नमस्ते का ही इतना अकड़ के जवाब दिया कि मैंने सोचा जब दुकान की चीज़ों की फ़ोटो लेने के बारे में पूछँगी तो पता नहीं इनका क्या रियेक्शन होगा। लेकिन फिर मैंने सोचा कि मुझे तो अपना काम करना ही है और मौक़ा देखते ही मैं दुकान में रखे सामान की फ़ोटो लेने लगी।

मैंने दो ही फ़ोटो ली थीं कि दुकान वाला एकदम भड़क गया और कहने लगा, “ये तुम मेरी दुकान में रखे सामान के फ़ोटो क्यों खींच रही हो? इनका क्या करोगी?”

मैंने कहा “मैं कोई प्रेस वाली नहीं हूँ जो कि तुम्हारी रिपोर्ट आगे कर दूँगी कि इस दुकान में चोरी का सामान भरा है। मुझे थोड़ी ज़रूरत थी कुछ तस्वीरों की।” वो बोले, “तो फिर तुम इस दूध वाले की दुकान की तस्वीरें क्यों नहीं ले लेतीं?”

मैं तस्वीरें लेती रही और साथ-साथ ही ये सब बात करती रही। मैं जहाँ की फ़ोटो लेती, वो भइया वहाँ से हट जाते। मुझे उनसे एक बार भी नहीं कहना पड़ा कि, “आप थोड़ा साइड दीजिए प्लीज़।”

उस दुकान वाले के चेहरे पर थोड़ी घबराहट सी थी, जैसे कि उनकी दुकान पर किसी ने रेड कर दी हो। इसलिए मुझे उनके सवालों पर थोड़ी हँसी आ रही थी। पर मैं हँसी नहीं।

कुछ समय बाद वो अपनी दुकान से निकलकर किसी दूसरी दुकान में जाकर बैठ गए और मुझसे कहने लगे, “अभी तो हमारी दुकान जमी है, और तुम अभी ही इसको उठवाना चाहती हो।” इस पर मैं हँसने लगी और मैंने कहा, “भइया आप इतना क्यों डर रहे हैं? मैं तो आपकी दुकान पर किताब निकालना चाहती हूँ।”

फ़ोटो खींचने के बाद मैंने कहा, “अच्छा, तो आप अपना नाम बताइए।” अब वो मेरा मुँह देखने लगे और बोले, “अब तुम मेरा नाम क्यों पूछ रही हो? मैं तुम्हें अपना नाम नहीं बताऊँगा।”

मैंने कहा, “कोई बात नहीं। दुकान के फ़ोटो तो मैंने ले ही लिए हैं, पता भी नोट कर लिया है।”

अब मैं वहाँ से चलने लगी और दुकान वाले से कहा, “अच्छा, तो जल्द ही मिलेंगे।” इस पर तो भइया बहुत ही ज़्यादा घबरा गए। उनकी घबराहट देखकर मैंने कहा, “मैं सरकार की तरफ़ से आई हूँ....”

बगल के दुकान वाले मुझे पहचानते थे, और ये भी जानते थे कि मैं कहाँ रहती हूँ। वो हँसने लगे। फिर बोले, “तेरी दुकान तो गई।”

खेल आगे ही चले जा रहा था, मैंने मुस्कुराते हुए कहा, “डरने की कोई बात नहीं है। मैं यहीं रहती हूँ। मुझे कुछ तस्वीरों की ज़रूरत थी, तो मैं यहाँ आ गई।” दूध वाले भइया ने भी कहा, “ये तो ऐसे ही मज़ाक कर रही थी।”

दोहराते हुए कि डरने की कोई बात नहीं है, मैंने कहा, “अच्छा मैं चलती हूँ।” और वहाँ से चल दी।

बड़े-बड़े शहरों में कुछ नम बातें

दोस्ती की तलाश में कुछ लेख

पहला अंक, 01 जनवरी से 31 मार्च 2005

सायबर-मोहल्ला ऐसे लोगों के झुंड से बना है जो ख़ुद से सीखने की प्रक्रिया को चलाते हैं। जहाँ कोई छोटा-बड़ा नहीं, कोई किसी का टीचर नहीं, न यहाँ रिश्तों की बंदिशे हैं और न ही शब्दों के साथ पाबंदी। यहाँ सोच को खुलने, खेलने-कूदने, गंभीर होने का खुला माहौल (मैदान) मिलता है। मैं इस जगह और इस ग्रुप से तीन साल से जुड़ी हूँ, यानि तब से जब से यह झुंड एक साथ चलने के लिए कदम से कदम मिलाने की कोशिश में था।

मैंने देखा है इस जगह के रूप को बदलते — बाहर के मौसम के बदलने के साथ, लोगों के आने-जाने के साथ, मेम्बर के घरों की पाबंदी के साथ, लैब के समय के साथ, सराय और अंकुर की गहरी दोस्ती के साथ, बस्ती की नज़रों के सामने, बस्ती में जगह बनाते हुए। इस तरह बदलते हुए, मैंने इस जगह पर लोगों को एक-दूसरे को लेख सुनाते, फ़ोटो पर बैठकर लिखते और रिकॉर्डिंग को सुनते हुए। एक जगह पर 8 के बाद 20 और 20 के बाद 40, 40 के बाद 60 लोगों को एक-दूसरे से सवाल करते हुए, नई दुनिया में जाते हुए देखा है। और यह सब इतना आसान नहीं था।

जहाँ कोई नियम और पाबंदी या सिलेबस न हो उस जगह को चलाना मुश्किल ही नहीं बहुत मुश्किल होता है। पर सायबर-मोहल्ला उन बंधनों को तोड़ने की शुरुआत कर चुका है। इस जगह पर लोग नहीं मानते नियम को।

यहाँ रिश्ते हैं, मुक्ति के साथ; रूल्ज़ हैं, खुलेपन के साथ। ये सवाल तलाशते हमउम्र नौजवानों का डेरा है।

अज़रा तबस्सुम
सायबर-मोहल्ला नेट्वर्क संवादक

लेख, फ़ोटोग्राफ़, ग्राफ़िक्स:
एलएनजेपी, दक्षिणपुरी और नांगलामाची के सभी शोधकर्ता

संपादक, सज्जा और प्रस्तुति:
यशोदा सिंह
लख्मी चंद कोहली

संपादकीय सुझाव:
प्रभात कुमार झा, मृत्युंजय चटर्जी, श्वेता सारदा

प्रस्तुति सहयोग :
सोहन पाल, पुष्पा रॉय

प्रकाशक:
अंकुरः सोसायटी फ़ॉर ऑलटरनेटिव्ज़ इन एडुकेशन
7/10, सर्वप्रिय विहार, नई दिल्ली - 110016

सराय + सेंटर फ़ॉर द स्टडी ऑफ़ डिवेलपिंग सोसाइटीज़
29, राजपुर रोड, दिल्ली - 110054

लिखें: ~~cm_broadsheet@sarai.net~~
~~http://www.sarai.net/cybermohalla/cybermohalla.htm~~

इस फ़ोटो में एक लड़का एक सड़क के बीच के डिवाइडर पर खड़ा है, और उसके आसपास से गाड़ियाँ गुज़र रही हैं। मैंने किसी को बताया नहीं कि फ़ोटो में जो लड़का है, वो मेरा भाई है। इसे हम लोग, यानि मैं, जानू, नाज़िश, अर्चना, सरिता, जोसफ़, मौसमी, प्रमोद अपने बीच रखकर देख रहे थे। सब लोग बड़ा ध्यान लगाकर लिख रहे थे कि उन्हें फ़ोटो को देखकर क्या लग रहा है। सभी ने फ़ोटो का अपनी कल्पना से साउन्ड बटन ऑन कर दिया था। सब उसकी आवाज़ें सुनने में लगे थे। इस बीच जानू चला गया क्योंकि उसे बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने जाना होता है।

फिर सबने अपना लिखा हुआ एक-दूसरे को सुनाया। सबने अलग-अलग लिखा था। जैसे - अर्चना ने सड़क पर खड़े हुए लड़के के बारे में लिखा था, किसी ने आस-पास की आवाज़ें दशाईं, किसी ने सड़क के आस-पास के माहौल के बारे में लिखा। जो एक ने नहीं लिखा था, वो दूसरे ने लिखा था। सबका फ़ोटो को देखने का नज़रिया अलग था।

पर मुझे लग रहा था कि हम सभी इस फ़ोटो से बहुत दूर थे। फिर मेरे दिमाग़ में एक आइडिया आया। मैंने सबसे कहा, “ऐसा लग रहा है जैसे इस फ़ोटो को काफ़ी दूर रखकर सुन और देख रहे हैं। चलो, इस फ़ोटो के अंदर घुसकर सोचें और लिखें।”

सब हँसने लगे। फिर मैंने कहा, “आप सबको इस फ़ोटो की जगह और अंदर का माहौल मालूम है जो, एक सड़क है। क्या आप इस सड़क को अलग-अलग तरह से सुनना और देखना चाहोगे? अगर हाँ, तो सब अपनी-अपनी कोई एक पहचान बना लो, जिससे सबकी उस जगह के बारे में अपनी एक कहानी और पहचान होगी।”

फिर सबने अलग-अलग कैरेक्टर ले लिये। आइये आपको उन सबसे मिलवाऊँ।

प्रमोद: ये उस फ़ोटो में चल रहा एक बूढ़ा इंसान है। वो क्या देखेगा, क्या सुनेगा? उसका इस जगह को देखने का नज़रिया क्या होगा, जब वो एक बूढ़ा है, तो उसकी अपनी एक अलग कहानी होगी।

जोसफ़: सड़क के डिवाइडर के पास खड़ा एक लड़का है।

सरिता: सड़क के बिलकुल पास बने पार्क में खेलती हुई एक 6-7 साल की छोटी लड़की है। सरिता उस सड़क को कैसे देखेगी? कैसे सुनेगी?

अर्चना : ये उस सड़क पर चल रहे टू-व्हीलर के पीछे वाली सीट पर बैठी एक 18-19 साल की लड़की है। उसके आगे एक लड़का है जो स्कूटर चला रहा है। अर्चना की क्या पहचान होगी? उस लड़के से क्या रिश्ता होगा? अर्चना उस सड़क के माहौल को कैसे सुनेगी और देखेगी?

नाज़िश: अपनी एक सहेली के साथ मार्किट से स्कूल का सामान लेकर सड़क से आ रही है। वो उस सड़क को कैसे देखेगी और सुनेगी?

दुर्गा+मौसमी: उस सड़क पर चल रहे ऑटो में बैठी हुई 15-16 साल की दो लड़कियाँ हैं, जो वहाँ से गुज़रती हुई कहीं जा रही हैं। वो उस सड़क को कैसे देखेंगी और सुनेंगी?

आप इस तस्वीर में कहाँ हैं?

दिलबाग़ खान एक ऑटो रिक्शा चलाते हैं। उनकी आँखों के नीचे हमेशा लाली रहती है, क्योंकि वो बहुत शराब पीते हैं। वो घर चलाने के लिए अपनी बीवी को बिलकुल पैसा नहीं देते। उनके दोस्त सब गुंडे हैं, और वो 42 साल के हैं।

एक बुढ़िया के बाल बिखरे हुए हैं, आँखें लाल हो रही है और पानी बह रहा है। वो एक चारपाई पर बैठी है और एक घर की तरफ़ इशारा करके चिल्ला रही है और बोल रही है कि यह क्या हो गया।

जब मैं छत पर अकेली बैठती हूँ तो मुझे बहुत मज़ा आता है। पर वहाँ बैठे हुए जब मुझे लोग घूर-घूर कर देखते हैं तो मुझे उनके चेहरे देख कर बहुत बोरियत महसूस होती है।

मुझे एक औरत नज़र आई। **वो सड़क पार कर रही थी।** उसका चेहरा काफ़ी पक्का और साँवला था। वो सड़क पार करके मेरी तरफ़ आ रही थी। उसके सामने से चार-पाँच आदमी गुज़र रहे थे। मैं सिर्फ़ उस औरत का ही चेहरा देख पा रही थी। उन आदमियों पर नहीं, **मेरी नज़र उस औरत की ही नज़रों पर जमी हुई थी**, कि वो इन लोगों के बीच से निकलते समय कैसे रियेक्ट करती है। लेकिन सिर्फ़ उसकी आँखें ही रियेक्ट नहीं कर रही थी, बल्कि उसके चेहरे के भाव भी बदलने लगे थे। **जो चेहरा काफ़ी नॉरमल नज़र आ रहा था, अब हल्की-सी तमतमाहट में था।** उसके हाथ भी अपने दुपट्टे को सही करते हुए अपने ही जिस्म पर खेल रहे थे। उसकी आँखें उन लोगों की, और मेरी, उसकी तरफ़ उठी हुई थी। उसकी आँखों में जल्दी-से निकलने की तेजी नज़र आ रही थी। **वो एक सेकण्ड में उन लोगों के बीच से निकल गई।** लेकिन उस एक सेकण्ड में उसके चेहरे ने न जाने कितनी ही क्रियाएँ कर डाली थीं।

जब 4-5 लोग एक साथ बैठते हैं, बातें करते हैं तब उनके बीच कुछ ऐसी बात होती है जो उनमें एक उछाल ला देती है। इसमें ना उनका शरीर हिलता है न हाथ-पैर। बहुत तेज़ आवाज़ें माहौल में फैल जाती हैं।

यशोदा और मैं दिल्ली गेट से गुज़र रहे थे। वहाँ हमने देखा रिक्शे पर एक आदमी और औरत बैठे थे, और एक आदमी रिक्शा चला रहा था। **तीनों आपस में बहुत हँसी-मज़ाक कर रहे थे।** मुझे लगा रिक्शे में बैठा आदमी भी रिक्शेवाला हो सकता है। **और वो औरत...** उसके **चेहरे की बनावट** अजीब थी। पता नहीं चल रहा था नाक कहाँ है, मुँह कहाँ। आँखें तो शायद थीं ही नहीं। चेहरे का मास भी गाल, नाक की तरफ़ से **बाहर की तरफ़ गिर रहा था।** मैं और यशोदा उसकी तरफ़ देख रहे थे। **फिर मैं उसके बारे में सोचने लगी।** वो कैसे जीती होगी, इसके साथ लोग कैसा व्यवहार करते होंगे। हो सकता है वो रिक्शे वाले की बहन या बीवी हो। शायद यशोदा भी उसके बारे में सोच रही थी।

एक आदमी जो बच्चों की नादानी भरी हरकतें देख रहा है। जिसका देखकर उसका चेहरा थोड़ा फैल जाता और उसके मुँह से कुछ दाँत चमकते नज़र आते। हल्की-हल्की बिना शब्दों की आवाज़ भी निकलती और आँखें थोड़ी छोटी हो जातीं।